किसका भला करेगी आम आदमी पार्टी

-मनोज कुमार झा

दिल्ली विधानसभा चुनाव में आम आदमी पार्टी की अप्रत्याशित जीत और अरविंद केजरीवाल के दिल्ली में सत्ता संभालने के चंद दिनों के बाद ही पार्टी में फूट की संभावना नज़र आने से आम आदमी पार्टी के समर्थकों में निराशा और असंतोष का भाव जगना कतई अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। ऐसा लगता है, 'आप' में भी वर्चस्व की लड़ाई शुरू हो गई है। योगेन्द्र यादव और प्रशांत भूषण को पार्टी की पी ए सी (पॉलिटिकल अफेयर्स केमेटी) से बाहर निकाल दिए जाने से नेतृत्व के वर्चस्व की यह लड़ाई सतह पर आ गई है और इसमें पार्टी के सर्वेसर्वा के रूप में अपनी पहचान बना चुके अरविंद केजरीवाल का पक्ष उनके चुप्पी साधे रहने से स्पष्ट हो जाता है। जाहिर है, अरविंद केजरीवाल पार्टी में वैचारिक प्रतिपक्ष की आवाज़ को दबाना चाहते हैं जो किसी भी रूप में लोकतांत्रिक संघर्ष को लेकर स्वयं को प्रतिबद्ध बताने वाली पार्टी के भविष्य के लिए अच्छा संकेत नहीं है।

भूलना नहीं होगा कि योगेन्द्र यादव 'आप' में वैचारिक रूप से प्रखर एक मात्र नेता हैं जिनका ज़मीनी आधार भी काफ़ी मज़बूत है। वहीं, पार्टी के अधिकतर नेता सत्ता हासिल होते ही करियरवादी रूझान दिखाने लगे हैं। पहले भी ऐसे ही नेताओं के कारण 'आप' को नुकसान उठाना पड़ा था। अरविंद केजरीवाल की राजनीतिक अदूरदर्शिता और नासमझी के कारण सत्ता तो हाथ से गई थी, पार्टी की छवि को भी धक्का पहुंचा था।

इसके बाद अरविंद केजरीवाल को संभवत: अपनी ग़लतियों का अहसास हुआ और उन्होंने नये सिरे से दिल्ली में संगठन को मजबूत बनाने का काम शुरू किया। साथ ही, चुनाव को दृष्टिगत रख उन्होंने ज़मीनी स्तर पर चुनाव प्रचार अभियान भी जारी रखा। इस बीच, शाजिया इल्मी और इन जैसे कई अति महत्वाकांक्षी तत्वों के इनसे छिटक कर भाजपा में चले जाने से भी केजरीवाल को फ़ायदा मिला। सबसे बड़ा फ़ायदा तो केजरीवाल को इस बात का मिला कि नौ महीने के शासन के दौरान ही प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी और भाजपा-राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की नीतियों से देश की बहुसंख्यक जनता का मोहभंग होने लगा। जनता यह भली-भांति समझ गई कि नरेन्द्र मोदी ने हवा-हवाई झूठे वायदे किए थे, जो किसी हाल में पूरे नहीं हो सकते। महंगाई सुरसा के मुंह की भांति बढ़ती ही रही, उस पर कोई रोक नहीं लग सकी। दूसरी तरफ, विश्व हिंदू परिषद् एवं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के दूसरे संगठनों ने साम्प्रदायिक घृणा का जैसा प्रचार शुरू किया, संतों-साध्वियों ने जैसे बयान देने शुरू किए, उससे अल्पसंख्यकों में भय और आतंक का माहौल तो बना ही, मध्यवर्ग को भी महसूस होने लगा कि मोदी सरकार एक प्रतिक्रियावादी सरकार है। यह सिर्फ़ बड़े पूंजीपतियों और कॉरपोरेट के हित में काम करेगी। आम जनता को थोड़ी भी राहत ये सरकार नहीं दे पाएगी, बल्कि लोगों को, खासकर दिल्ली की जनता को यह महसूस होने लगा कि यह पूर्ववर्ती कांग्रेसी सरकार से भी नाकारा साबित होगी। मोदी ने अपनी छवि एक बड़बोले और भाषणबाज़ नेता की बनाई जो ज़मीनी काम के मामले में दो कौड़ी के भी साबित नहीं हो सके। उनकी छवि का नशा बहुत जल्दी ही वोटरों पर से काफ़ूर होने लगा।

इधर, कांग्रेस का जनाधार पूरी तरह से साफ़ हो चुका था। अन्य दलों की दिल्ली में कोई खास मौजूदगी नहीं थी। ऐसे में, नए नारों के साथ, नए राजनीतिक मुहावरों एवं प्रतीकों के साथ आम आदमी पार्टी दिल्ली की जनता की एकमात्र पसंदीदा पार्टी बनकर उभरी तो इसे कोई आश्चर्य नहीं कहा जा सकता। यद्यपि भाजपा ने आम आदमी पार्टी के खिलाफ़ चुनाव प्रचार में अपनी पूरी ताकत झोंक दी, स्वयं प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने कई रैलियां की, पर भीड़ बटोर पाने में वे पूरी तरह असफल रहे। मोदी का करिश्मा फ़ेल हो गया। अमितशाह की शातिराना चालें नाकाम हो गई। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ को भी पता चल गया कि अल्पसंख्यकों में भय का माहौल पैदा कर हमेशा चुनावी जीत हासिल नहीं की जा सकती। दिल्ली विधानसभा चुनाव में आम आदमी पार्टी को जो भारी विजय मिली, उसका अंदाज़ संभवत: अरविंद केजरीवाल और उनके सिपहसालारों-समर्थकों को भी नहीं था। इस चुनाव ने दिखा दिया कि वाकई जनता के असली मुद्दों को उठा कर राजनीति की जा सकती है और चुनाव में विजय भी हासिल की जा सकती है, पर असली परीक्षा तो चुनाव जीतने के बाद शुरू होती है, जब जनता की उम्मीदों पर खरा उतरने की चुनौती सामने होती है।

अब यही चुनौती अरविंद केजरीवाल के सामने है, पर भारी बहुमत से चुनाव जीतने के बाद अरविंद केजरीवाल ने दृढ़ता का परिचय देने की जगह ढुलमुलपन दिखाना शुरू कर दिया है, जिसका परिणाम योगेन्द्र यादव और प्रशांत भूषण को पी ए सी से निकाले जाने के रूप में सामने आया है। राजनीतिक टिप्पणीकार और विश्लेषक इसके इसे 'आप' में जारी नेतृत्व के लिए संघर्ष और उठापटक के रूप में देख रहे हैं। साथ ही, इसे इस रूप में भी देखा जा रहा है कि यह प्रवृत्ति यूं ही परवान चढती रही तो अरविंद केजरीवाल का सुधारवादी एजेंडा लागू नहीं हो पाएगा।

इधर, कांग्रेस का जनाधार पूरी तरह से साफ़ हो चुका था। अन्य दलों की दिल्ली में कोई खास मौजूदगी नहीं थी। ऐसे में, नए नारों के साथ, नए राजनीतिक मुहावरों एवं प्रतीकों के साथ आम आदमी पार्टी दिल्ली की जनता की एकमात्र पसंदीदा पार्टी बनकर उभरी तो इसे कोई आश्चर्य नहीं कहा जा सकता। यद्यपि भाजपा ने आम आदमी पार्टी के खिलाफ़ चुनाव प्रचार में अपनी पूरी ताकत झोंक दी, स्वयं प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने कई रैलियां की, पर भीड़ बटोर पाने में वे पूरी तरह असफल रहे। मोदी का करिश्मा फ़ेल हो गया। अमितशाह की शातिराना चालें नाकाम हो गई। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ को भी पता चल गया कि अल्पसंख्यकों में भय का माहौल पैदा कर हमेशा चुनावी जीत हासिल नहीं की जा सकती। दिल्ली विधानसभा चुनाव में आम आदमी पार्टी को जो भारी विजय मिली, उसका अंदाज़ संभवत: अरविंद केजरीवाल और उनके सिपहसालारों-समर्थकों को भी नहीं था। इस चुनाव ने दिखा दिया कि वाकई जनता के असली मुद्दों को उठा कर राजनीति की जा सकती है और चुनाव में विजय भी हासिल की जा सकती है, पर असली परीक्षा तो चुनाव जीतने के बाद शुरू होती है, जब जनता की उम्मीदों पर खरा उतरने की चुनौती सामने होती है।

साथ ही, पूंजीवादी ढांचे के भीतर ही भ्रष्टाचार विरोधी और एक हद तक जनहित पर आधारित वैकल्पिकराजनीति का मॉडल भी कतई कारगर साबित नहीं हो सकता।

इससे उन अति वामपंथियों की इस धारणा को बल मिला है कि अरविंद केजरीवाल उन थैलीशाहों के ही एजेंट हैं जो सड़ांध मार रही इस पूंजीवादी व्यवस्था में सुधार के पैवंद लगा कर व्यापक जनक्रांति की राह में बाधक बनना चाहते हैं। वो पूंजीपतियों के नए एजेंट के रूप काम करना चाहते है जो भेड़ की खाल में हो और संत के रूप में कंठी-माला धारण करके आए। यानी बगुला भगत।

तो क्या अरविंद केजरीवाल बगुला भगत हैं? उनके प्रचार और धन संग्रह के बहुत से तौर-तरीके, उनके आस-पास जुटी मंडली, चुनाव जीतने के बाद उनका मसीहाई अंदाज़, जीत को ईश्वर की कृपा घोषित कर देना और मूलभूत समस्याओं की बात न कर बस सिर्फ़ थोड़ी राहत देने की बातें करना आदि से यही साबित होता है कि यह व्यक्ति मरणशील पूंजीवादी व्यवस्था में क्रांतिकारी बदलाव की चाहत रखने वाले युवाओं की आस्था बनाये रखना चाहता है। यह पूरी तरह सें सड़-गल चुकी मेहनतकशों का ख़ून चूस कर चल रही इस व्यवस्था को सुधार की थेगलियां लगा के बचाये रखने की कोशिश करना चाहता है, जो कि असंभव है। पूंजीवादी व्यवस्था का संकट इस असमाधेय स्तर तक पहुंच चुका है कि इसमें सुधार की आशा जगा कर लोगों को सिर्फ़ बरगलाया ही जा सकता है, सुधार सफलीभूत नहीं हो सकता। यह बात साबित होकर रहेगी। अरविंद केजरीवाल के पास सत्ता में बने रहने के लिये पांच साल का वक़्त है। पांच साल तक उन्हें दिल्ली के मुख्यमंत्री की कुर्सी से कोई नहीं हटा सकता। इस दौरान वो सुधार की पुरज़ोर कोशिश करें, मिटाएं भ्रष्टाचार, दे सकें तो दें जनता को राहत, पर सच तो ये है कि वे ऐसा कुछ नहीं कर पाऐंगे। पूंजीवादी व्यवस्था के अपने नियम है। वह मेहनतकश का ख़ून चूसकर ही ज़िंदा रह सकती है, वरना नहीं। अरविंद केजरीवाल एक काम ज़रूर कर सकते हैं, और वो ये कि पार्टी में तमाम उठा-पटक और सत्ता संघर्ष के बावजूद पांच साल तक दिल्ली की जनता को बरगलाए रख सकते हैं।

जहां तक, दिल्ली के बाहर पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र आदि राज्यों में पार्टी का प्रभाव बढाने की बात थी तो पार्टी संगठन पर प्रभुत्व कायम रखने की जो उठापटक शुरू हुई है, उस वजह से यह काम भी असंभव-सा लगता है, क्योंकि 'आप' समर्थकों का इस पार्टी से बड़ी तेज़ी से मोहभंग शुरू हो चुका है। दूसरे, इन राज्यों में चुनाव अभी बहुत दूर है और आम आदमी पार्टी का जो ढांचा है, वह चुनाव में भाग लिये बिना कैसे कोई आकार ले सकता है, क्योंकि यह पार्टी अन्य पार्टियों से इस रूप में भी भिन्न और ग़ैर परंपरागत है कि महज़ चुनाव आधारित ही है।

अरविंद केजरीवाल की कोई ऐसी विचारधारा नहीं जो जनाधारित राजनीति का कारक बन सके। शिवजी की बरात है आम आदमी पार्टी, पर अरविंद केजरीवाल तो स्वयं शिव के अवतार नहीं बन सकते। यह उनकी सीमा है लघुमानव होना, गरलपायी नहीं हो सकते। उनके आस-पास जो हुजूम है, जल्दी ही कॉरपोरेट के आगे घुटने टेकता नज़र आएगा जो आज की दुनिया का असली ख़ुदा है। अरविंद केजरीवाल उसी का मसीहा होने का दम भरेंगे क्या? वे तो अन्ना के क़दमों में भी झुकते हैं और एक भांड कवि कुमार विश्वास को अपनी पार्टी का प्रवक्ता बना रखा है जो हिंदूवादी फ़सीवादी संगठन आरएसएस के काफ़ी क़रीबी है।

ऐसे में, जन समर्थक बुद्धिजीवियों को, मूलभूत परिवर्तन की आकांक्षा रखने वाले युवाओं को और शोषण के कोल्हू में जुती जनता को सावधान रहने की जरूरत है। आम आदमी पार्टी बना कर और विकल्पहीनता के शून्य में जनसमर्थन से सत्ता में आकर अरविंद केजरीवाल जनता का कोई भला नहीं कर सकते, सिवा उसे बरगलाने के। और हां, लाख चाहें, पूंजीपतियों का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। फ़िर भला कैसे करेंगे? पूंजीपतियों का भी भला हो और जनता का भी, दोनों एक साथ नहीं हो सकता। भला किसी एक का ही हो सकता।

अरविंद केजरीवाल अन्य दलों के नेताओं की तरह ही कहते हैं कि वह जनता की सेवा करना चाहते हैं। यह हास्यास्पद है। जनता को सेवा की ज़रूरत नहीं, सत्ता में भागीदारी की जरूरत है। अभी सत्ता लुटेरे पूंजीपतियों के हाथों में है। यह सत्ता जनता को चाहिए-मेहनतकश जनता को। सारे संसाधन पूंजीपतियों के क़ब्ज़े में हैं, यह मेहनतकश जनता को चाहिए। जाहिर है, यह अरविंद केजरीवाल का एजेंडा नहीं है। फ़िर इनसे यह उम्मीद भी क्यों की जाए? लेकिन अगर अरविंद केजरीवाल ग़रीबों और आम आदमी की बात करते हैं तो फ्री बिजली, फ्री पानी, फ्री वाई-फ्राई बाद में, पहले तो ठेकेदारी प्रथा के तहत लुट-पिट रहे मज़दूरों को इस बंधुआगिरी से मुक्त कराएं। और अगर आम आदमी के मुख्यमंत्री हैं तो यह सुनिश्चित करें कि दिल्ली में खुले आसमान के नीचे कोई नहीं सोएगा, हर आदमी को एक छत मयस्सर होगी। क्या ये है एजेंडा केजरीवाल का? नहीं। तो फिर यह सच है कि आम आदमी पार्टी ख़ास आदमियों की ही पार्टी है। इससे व्यापक बदलाव की उम्मीद नहीं की जा सकती।

तुर्की-ब-तुर्की

''भाजपा को मुफ़्ती मोहम्मद सईद से पूछना चाहिये कि वे भारतीय हैं या नहीं।'' (राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के मुखपत्र 'आर्गेनाजर' में लिखे लेख में कशमीर के अलगाववादी नेता मसर्रत आलम की रिहाई के संदर्भ में)

हमारा कहना है:-

- .ऐसी बेहूदा और मूर्खतापूर्ण टिप्पणी से आपकी अपनी नीयत और समझ के स्तर का पता चलता है सरदार जोगिन्दर सिंह जी। अपने आप को खबरों में बनाये रखने और आर एस एस की दलाली करने का इतना ही शैक है तो कोई और मुद्दा चुन लेते। सभी जानते हैं कि संघ समय-समय पर मोदी की टांग खींचता रहता है। इसमें आपको सहयोग देना ही था तो कम से कम कुछ अक्ल की बात ही कर लेते। मुफ़्ती 1989-90 में विश्वनाथ प्रताप सिंह सरकार में केन्द्रीय गृह मन्त्री थे। उस समय आप स्वयं भी भारतीय पुलिस सेवा में होते थे। क्या आप यह कहना चाहते हैं कि देश का गृह मन्त्री, जिसे आप एड़ियां बजा कर सैल्यूट किया करते थे, भारत का नागरिक ही नहीं है।
- अब यह भी सामने आ गया है कि मसर्रत आलम की रिहाई की पूरी प्रक्रिया काशमीर में राष्ट्रपति शासन (यानी गवर्नर एन एन वोहरा, केन्द्रीय गृह मन्त्री राजनाथ सिंह व प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी) के दौरान ही पूरी हो चुकी थी। मुफ़्ती ने तो सिर्फ़ बहती गंगा में हाथ धोकर 'पुण्य' कमाने का काम किया है। क्या आप में और आपके आका संघ में इतनी हिम्मत है कि वोहरा, राजनाथ सिंह और मोदी से भी उनके भारतीय होने का प्रमाण मांग सकें।
- आर एस एस की राजनीति में हाथ बंटाते हुए मुफ़्ती और आलम पर सवाल खड़ा करना आपके लिये आसान रहा क्योंकि वे मुसलमान हैं। वरना इसी सवाल को स्वर्ण मन्दिर के जत्थेदारों और पंजाब के मुख्यमंत्री बादल से पूछने की हिम्मत क्यों नहीं होती? कौन नहीं जानता कि इन्हीं महानुभावों की अनुमति से स्वर्ण मन्दिर परिसर में खुंखार आतंकवादियों जरनैल सिंह भिंडरावाले और सुबेग सिंह की तस्वीरें लगी हुई हैं। इसी गैलरी में इन्दिरा गांधी के हत्यारों बेंत सिंह और सतवंत सिंह के चित्र भी शोभायमान हैं। आलम तो खाली अलगाववादी है, उक्त सभी आतंक की मिसाल माने जाते हैं। पर यदि अपने जत्थेदारों और बादलों पर सवाल उठाया तो मिनटों में तनखैय्या करार दिये जाओगे। है हिम्मत?
- मोदी के नेतृत्व में भाजपा ने मुफ़्ती के साथ मिली-जुली सरकार बनाकर देश को जोड़ने का एक तो काम किया। संघ के हिन्दुत्व एजेंडे को यह भला कैसे रास आ सकता था। मुफ़्ती के विरुद्ध आपकी सारी भड़ास इसी कवायद का हिस्सा मात्र है। चमचागिरी आपको मुबारक हो। कृप्या इसे देश भक्ति का जामा तो न पहनायें।